8 ‖ पर्युषणः एक ऐतिहासिक समीक्षा

परम्पराएँ सामाजिक हों या धार्मिक, एकदिन जन्म लेती हैं, विकास पाती हैं और एकदिन देशकालानुसार मोड़ लेती हैं, एवं परिवर्तित भी होती हैं। किसी भी परम्परा के लिए यह दावा नहीं किया जा सकता कि वह अपने मूल रूप में ज्यों की त्यों हैं। उसमें न कभी कोई परिवर्तन हुआ और न कभी होगा।

धर्म परम्पराएँ न अनादि हैं, न अपरिवर्तित

सामाजिक परम्पराओं के अपरिवर्तित रूप का भी कम आग्रह नहीं है, फिर भी विचार जागृति के इस युग में यह आग्रह कम हो रहा है, वास्तविकता को स्वीकार करने के लिए जनमानस किसी न किसी अंश में तैयार हो रहा हैं। परन्तु धार्मिक परम्पराओं के संबंध में स्थिति बड़ी विचित्र है। यहाँ धार्मिक मान्यताओं से प्रतिबद्ध मानस, कुछ भी परिवर्तन मानने के लिए, तैयार नहीं है। यदि कभी कोई प्रबुद्ध विचारक इतिहास के विश्लेषण के आधार पर सप्रमाण परिवर्तन की चर्चा करता भी है, तो समाज में सहसा एक क्षोभ फूट पड़ता है, या क्षोभ जगाया जाता है कि 'यह तो धर्म का नाश हो रहा है।' ये तथाकथित धर्मभीरु लोग परम्पराओं को अनादि अनन्त मान कर चलते हैं। और धर्म श्रद्धा के नाम पर इस अनादि-अनन्त की मिथ्या मान्यता को बड़े धड़ल्ले के साथ धकेले जा रहे हैं। इतिहास कुछ भी कहे, सत्य कुछ भी प्रकाश में आए, पुराने धर्मग्रन्थ भी ऐतिहासिक सत्य का कितना ही क्यों न समर्थन करें, परन्तु इन लोगों का अनादि-अनन्त सम्बन्धी यह अंधराग कभी बन्द नहीं होता। अपितु और अधिक ऊँचे स्वर से ताल-बेताल गाया जाने लगता है। भले ही सत्य की हत्या हो, इतिहास को तोड़ा-मरोड़ा जाए, प्राचीन धर्मग्रन्थों के सर्वथा विपरीत, साथ ही उपहासास्पद अर्थ किए जाएँ, कुछ भी हो, अपना अहं सुरक्षित रहना चाहिए, जनता में हम जो कुछ कहते हैं, उसकी श्रद्धा बनी रहनी चाहिए। न हम आँख खोलें, न जनता खोले। बस, चलने दो, जो चलता आ रहा है, और कहते हैं कि जो चलता आ रहा है, वह अनादि से चलता आ रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु सत्य यह है कि परम्पराएँ अनादि नहीं हैं। वे तो बनती हैं, बिगड़ती हैं, सँवरती हैं, और फिर बिगड़ती हैं। मोड़ लेती हैं, बल खाती हैं, और एकदिन कहीं-से-कहीं पहुँच जाती हैं। कुछ का निर्दिष्ट काल बदल जाता है, और कुछ का तो स्वरूप ही बदल जाता है। और हम हैं इस बदले हुए स्वरूप को ही सनातन सत्य मान लेते हैं।

धर्म परम्पराएँ स्वयं धर्म नहीं हैं

धर्मपरम्पराए धार्मिक रीति-रिवाज हैं, अमुक अपेक्षा से धर्म की संदेश-वाहक हैं, प्रेरक हैं, किन्तु वे स्वयं में धर्म नहीं हैं। धर्म अनादि है, अनंत भी है। धर्म का न कभी जन्म होता है, न कभी मरण होता है। वह सदा एकरस एवं अखण्डस्वरूप रहता है। वह अंदर के चैतन्य का सहज शुद्ध भाव है, स्व-स्वभाव है, अतः वह परिस्थितिवश दब सकता है, किन्तु कभी विनष्ट नहीं हो सकता। हाँ, धार्मिक परम्पराएँ देशकालानुसार जन्म लेती हैं, बदलती भी हैं; और कभी-कभी अनुपयोगी हो जाने के कारण मर भी जाती हैं। स्पष्ट है कि परम्पराएँ अनादि नहीं हैं, अपरिवर्तित भी नहीं है। परम्पराओं का शरीर बाह्य विधिनिषेधों का शरीर है। और वह बाह्य विधिनिषेध बदलते रहते हैं। समयानुसार विधि, निषेध बन जाता है और निषेध, विधि।

पर्युषण सम्बन्धी मेरा लेख

गत पर्युषण पर्व पर 'अमर भारती' में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें पर्युषण पर्व के अतीत और वर्तमान की चर्चा थी। बताया गया था कि पर्युषण पर्व प्राचीन काल में आषाढ़ पूर्णिमा को मनाया जाता था। वह मूल में वर्षावास के रूप में था, साथ ही वार्षिक आलोचना भी थी। यह उत्सर्ग विधान था। किन्तु यदि अनुकूल एवं निर्दोष क्षेत्र तथा निवासस्थान न मिले, तो पाँच-पाँच दिन की वृद्धि के क्रम से अंततोगत्वा भाद्रपद शुक्ला पंचमी को तो पर्युषण कर ही लेना चाहिए, भले ही किसी वृक्ष के नीचे भी क्यों न करना पड़े। जघन्य 70 दिन का पर्युषण अर्थात् वर्षावास तो होना ही चाहिए। यह सब मेरा मनः कल्पित नहीं था, इसके लिए मैंने महान् श्रुतधर आचार्यों के प्रमाण दिए थे, उनके तत्कालीन ग्रन्थों के शब्दपाठ उद्धृत किए थे। वह एक विशुद्ध ऐतिहासिक चर्चा थी, और कुछ नहीं। आज के युग में इस प्रकार की चर्चाएँ प्रायः प्रत्येक संप्रदाय में होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, उन पर विद्वान एवं जिज्ञासु विचार करते हैं, वास्तविक सत्य को समझने का तटस्थ भाव से, अनाग्रह बुद्धि से प्रयत्न करते हैं। यदि कुछ अस्पष्ट रहता है, तो उस पर विचार चर्चा भी चलाते हैं। उक्त चर्चा को प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य भी एकमात्र यही था कि निष्पक्ष विचार के प्रकाश में पर्युषण की वास्तविक स्थिति का दर्शन किया जाए, अपने को सांप्रदायिक मान्यताओं के पक्षपात एवं व्यामोह के अंध-आग्रह से मुक्त किया जाए।

मैं क्या चाहता हूँ

मेरा यह अभीष्ट नहीं है कि पर्युषण के वर्तमान काल को बदला जाए, उसी पुरानी स्थिति में पहुँचा जाए। मैं इतना बेभान नहीं हूँ कि समाज की स्थिति को नहीं समझ सकता होऊँ। आज वापस लौटना एक तरह असंभव ही है। अत: मेरा उद्देश्य तो केवल इतना ही है कि पर्युषण पर्व की इन विभिन्न मान्यताओं को लेकर आए दिन जो विग्रह होते हैं, शान्त जन-मानस क्षुब्ध होते हैं, एक दूसरे पक्ष को शास्त्र विरुद्ध एवं विराधक कहते हैं, यह सब बेतुका आधारहीन संघर्ष शान्त हो। सब मिलकर एक निर्णय कर लें, और उसका निष्ठा से पालन करें। परम्पराएँ अनादि नहीं हैं, वे पहले भी बदली हैं। और उन बदली हुई परम्पराओं को मान्यता भी मिली है। आज भी क्यों नहीं मान्यता मिल सकती है? दो सावन होने पर एक पक्ष का आग्रह दूसरे सावन में पर्युषण करने का है, और इसके लिए वह शास्त्रों की दुहाई देता फिरता है। दूसरा पक्ष भादवे का आग्रह रखता है और कहता है कि दूसरे सावन में पयुर्षण करना शास्त्र विरुद्ध है, जिनाज्ञाविरुद्ध है। भादवे में ही पर्युषण करो, अन्यथा भगवान् की आज्ञा के विपरीत आचरण करने के कारण अनन्त संसार परिभ्रमण करना पड़ेगा। यही विग्रह दो भादवा होने पर उठ खड़ा होता है। कुछ का आग्रह पहले का है, तो कुछ का दूसरे का! अजीब हालत है! विचारक वर्ग हँसता है, और वह जिस श्रद्धा के नाम पर यह सब हो-हल्ला होता है, उससे दूर होता जाता है। मेरा कहना है कि यह प्रचलित मान्यताओं का आग्रह या कदाग्रह आधारहीन है। प्राचीन ग्रन्थों को आँखों से देखों, वास्तविकता कुछ और ही है। वहाँ तुम्हारी दोनों ही मान्यताओं का कहीं अतापता नहीं है। उस प्राचीन सत्य को आज अपना नहीं सकते हो, तो कम-से कम आज के आग्रह तो छोड़ो, जिनशासन के हित में एक मत होकर किसी एक स्थिति का निर्णय कर लो और उस पर चलो। व्यर्थ के विग्रह मत खड़े करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्युषण अनादि नहीं है

पर्युषण के सम्बन्ध में जो यह बात प्रचारित की गई है कि यह अनादि है, अनन्त है, और सार्वत्रिक है, सत्य नहीं है। पर्युषण भी एक परम्परा है, अतः वह भी अन्य परम्पराओं की भाँति न अनादि है, न अनन्त है और न सार्वत्रिक ही है।

जैन काल गणना के अनुसार भरत और ऐरवत क्षेत्रों में असर्पणी-उत्सर्पणी का बीस कोडाकोडीसागरपरिमित विशाल कालचक्र है। वर्तमान अवसर्पिणीकाल का प्रथम आरक[1] चार कोडा कोडी सागर का, दूसरा आरक तीन कोडाकोडी सागर का, तीसरा आरक दो कोडाकोडी सागर का है। उक्त तीनों आरकों में तीसरे आरक का बहुत अल्पकालिक अन्तिम भाग छोड़कर कहीं भी पर्युषण की व्यवस्था नहीं है। भरत तथा ऐरवत क्षेत्र में इसलिए नहीं है कि वहाँ तत्कालीन अकर्मभूमि युग में धर्म परम्परा ही नहीं थी। और महाविदेह क्षेत्र में इसलिए नहीं कि वहाँ सर्वदा एक जैसी रहनेवाली अवस्थित कालव्यवस्था है, जो भारतीय चतुर्थारक के समान है, अतः वहाँ पर्युषण परम्परा कभी प्रचलित ही नहीं हैं तृतीय आरक के अन्त में भगवान् ऋषभदेव के युग में कुछ समय के लिए पर्युषण की व्यवस्था हुई, परन्तु भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् चतुर्थ आरक में

भगवान् अजितनाथ से लेकर भगवान् पार्श्वनाथ तक 22 तीर्थंकरों के युग में लाखों-करोड़ों, अरबोखर्बों आदि वर्षों तक पर्युषण की परम्परा ही न रहीं न भारत में रही, न ऐरवत में, और महाविदेह में तो कभी होती ही नहीं। अतः यह सुदीर्घकाल भी ऐसा काल है, जबकि समग्र भूमंडल पर कहीं भी पर्युषण अवस्थित नहीं था।

जैन परम्परा में साध्वाचार सम्बन्धी दश कल्प बताए हैं– 1. आचेलक्य, 2. औद्देशिक, 3. शय्यातर पिण्ड, 4. राजपिण्ड, 5. कृतिकर्म, 6. अहिंसादि चार या पाँच महाव्रत, 7. पुरुष ज्येष्ठ धर्म, 8. प्रतिक्रमण, 9. मासकल्प ओर 10. पर्युषण कल्प। बृहत्कल्पसूत्र भाष्य में इस सम्बन्ध में एक गाथा है:

"आचेलक्कुद्देसिय, शिज्जायर रायपिण्ड कितिकम्मे।
वत जेट्ठ पडिक्कमणे, मासं पज्जोसवण कप्पे" ॥6364॥

उक्त दश कल्पों में शय्यातर पिण्ड, अहिंसादि चतुर्याम व्रत, पुरुष ज्येष्ठ, कृतिकर्म– ये चार अवस्थित कल्प हैं, जो सभी 24 तीर्थंकरों के शासन में होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। आचेलक्य आदि शेष छह कल्प अनवस्थित हैं। ये कल्प प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासन में तो नियत होते हैं, शेष मध्यकालीन 22 तीर्थंकरों के शासन में नियत नहीं होते। महाविदेह क्षेत्र में भी नहीं होते। संक्षेप में प्रमाण स्वरूप कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं–

"सिज्जायरपिंडे य, चाउज्जामे य पुरिसजेट्ठे य।
कितिकम्मस्स य करणे, चत्तारि अवट्ठिया कप्पा ॥6361॥
आचेलक्कुद्देसिय, सपडिक्कमणे य रायपिंडे य।
मासं पज्जोसवणा, छऽप्पेतऽणवट्ठिता[2] कप्पा ॥6362॥

–बृहत्कल्पभाष्य

"छसु अट्ठिओ उ कप्पो, एत्तो मज्झिमजिणाण विण्णेओ।
णो सययसेवणिज्जो, अणिच्चमेससरूवो त्ति ॥7॥"

–पंचा. 17 द्वार

एवं महाविदेहेऽपि द्वाविंशतिजिनवत् सर्वेषां जिनानां कल्पव्यवस्था।

–कल्पसूत्र सुबोधिका, व्या. 1

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्री अजितनाथ से लेकर श्री पार्श्वनाथ तक बाईस तीर्थंकरों के शासन में पर्युषण कल्प नियत नहीं हैं। पर्युषण का मूल अभिप्राय यहाँ वर्षावास से है। वर्षा होती रहे तो एक स्थान पर वर्षाकाल में, 22 तीर्थंकरों के साधु-साध्वी, निवास कर सकते हैं। यदि वर्षा न हो तो कभी भी विहार कर सकते हैं।[3] उनके यहाँ महावीर के शासन–जैसी चौमास करने की, नियत परम्परा नहीं है। मासकल्प की भी कोई व्यवस्था नहीं है। यदि निर्दोष स्थिति जानें, और अन्य कोई अपेक्षा न हो तो देशोन पूर्व कोटि तक भी एक स्थान पर रह सकते हैं। अस्तु, जब उस युग में चौमास की ही कोई व्यवस्था नहीं थी, तब आषाढ़-पूर्णिमा का वर्षावास सम्बन्धी पर्युषण या आजकल का प्रचलित वर्षावास कालीन भादवासुदि पंचमी का पर्युषण, कैसे तर्क संगत हो सकता था?

दूसरा प्रश्न प्रतिक्रमण का है। कुछ महानुभाव पर्युषण का सम्बन्ध वर्षावास-स्थापना से न जोड़कर मात्र वार्षिक प्रतिक्रमण से जोड़ते हैं। किन्तु उक्त पक्ष से भी 22 तीर्थंकरों के शासन में पर्युषण सिद्ध नहीं होता। 22 तीर्थंकरों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासन में प्रतिक्रमण अनियत है। दिन या रात्रि में यदि कभी अतिचार-दोष लगे, तो तत्काल उसी दोष का प्रतिक्रमण कर आचारशुद्धि कर लेते थे। यदि दोष नहीं लगा हों, तो प्रतिक्रमण नहीं करते थे, जैसा कि महावीर शासन में दोष लगे या न लगे दिन रात्रि की संधि में उभयकाल अवश्य प्रतिक्रमण करना होता है। जबकि दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं वार्षिक के रूप में प्रतिक्रमण की कोई परम्परा ही नहीं थी,[4] तब वार्षिक प्रतिक्रमण रूप पर्युषण करने की बात स्वतः खंडित हो जाती है–"**मूलं नास्ति कुतः शाखा।**"

पर्युषण की अनादिकालीन परंपरा के लिए, और खास तौर पर वर्षावास के एक महीना बीस रात्रि बीतने पर भादवासुदि पंचमी के दिन की प्रतिबद्धता के लिए जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति (2 वक्षस्कार) के उस उल्लेख की चर्चा की जाती है, जो उत्सर्पिणी के द्विवतीय आरक के प्रारंभ से होने वाली सात-सात दिन की वर्षा से सम्बन्धित है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ यह आधारहीन बात कैसे प्रचारित की जाती है? जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में–**पुष्कलावर्त, क्षीर, घृत, अमृत और रस**–इस प्रकार पाँच वर्षाओं का ही उल्लेख है। मूल पाठ के अनुसार पाँच प्रकार की वर्षाएँ सात-सात दिन होती हैं, तो इस प्रकार वर्षा के 35 ही दिन हुए, 49 तो नहीं। बीच में सात-सात दिन के दो उघाड़ यानी वर्षा रहित मुक्त दिनों की बात कही जाती है, परन्तु इन उघाड़ों का न मूलपाठ में कोई उल्लेख है, न टीका में। वहाँ तो केवल पाँच वर्षाओं का ही वर्णन है।[5] साथ ही इस प्राकृतिक घटना के साथ पर्युषण का कोई सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक सम्बन्ध है, ऐसा भी कुछ नहीं है। सम्बन्ध हो भी कैसे सकता है? जबकि महाविदेह में पर्युषण नहीं, 22 तीर्थंकरों के युग में पर्युषण नहीं, अकर्म भूमि युग में पर्युषण नहीं, तब केवल प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासन के लिए ही यह प्राकृतिक घटना किसी एक नियम का सूत्रपात करे, भला यह साधारण बुद्धि के व्यक्ति को भी कैसे आश्वस्त कर सकती है?

चर्चा लम्बी हो रही है, अन्यथा और भी प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं। बुद्धिमान पाठक इतने पर से ही समझ सकते हैं कि पर्युषण के सम्बन्ध में सत्य स्थिति क्या है? स्पष्ट है कि पर्युषण की परम्परा अनादि नियत नहीं है। भगवान् पार्श्वनाथ के बाद भगवान् महावीर ने पर्युषण की परम्परा चालू की। कल्पसूत्र के अनुसार उन्होंने स्वयं भी पर्युषण किया, और वह फिर परम्परा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में उत्तरोत्तर प्रसारित एवं प्रचारित होता चला गया। समवायांग (79) और कल्पसूत्र (सामाचारी-प्रकरण) का वह पाठ ही ध्वनित करता है पर्युषण पहले से नहीं चला आ रहा था, बल्कि भगवान् महावीर ने ही चालू किया। इसीलिए वह पाठ स्पष्ट कहता है कि "**समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे वइक्कंते, सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहि वासावास पज्जोसवेइ**।" विचारशील अध्येता देख सकते हैं—यह इतिहास सूत्र है, विधि (कल्प) सूत्र नहीं। श्रमण भगवान् महावीर के सीधे नाम से आगम साहित्य में साध्वाचार का कोई विधि सूत्र नहीं है। जितने भी विधिसूत्र हैं, वे[6] सब निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी, भिक्खु-भिक्खुणी के नामोल्लेख के साथ आज्ञा के रूप में प्रारंभ होते हैं, तीर्थंकरों के नाम से नहीं। उक्त विचारणा पर से पाठक निर्णय कर सकते हैं—पर्युषण परम्परा अनादि नहीं है।

वर्ष-समाप्ति और संवत्सरी पर्व

पर्व की दृष्टि से पर्युषण प्राचीनकाल में वर्ष के अन्त में होता था। इसीलिए उसे संवत्सरी पर्व कहते हैं, जो आज भी जन साधारण की भाषा में संवच्छरी कहा जाता है। संवत्सरी का अर्थ वार्षिक पर्व है, अतएव जहाँ प्रतिक्रमण के पाठ में दिन समाप्ति पर '**दिवसोवइक्कुतो**', रात बीतने पर, '**राई वइक्कंता**', पक्ष पूर्ण होने पर, '**पक्खो वइंक्कतो**' चार महीने समाप्त होने पर '**चउम्मासी वइक्कंता**' कहा जाता है उसी प्रकार संवच्छर=संवत्सर अर्थात् वर्ष पूरा होने पर '**संवच्छरो वइक्कंतो**' बोला जाता है।

मैं पूछता हूँ, जैन परम्परा के अनुसार वर्ष कब पूरा होता है? क्या सावन में होता है? क्या भादवा में होता है? नहीं, बिल्कुल नहीं। जैन परम्परा के अनुसार वर्ष पूरा होता आषाढ़ में, आषाढ़ पूर्णिमा के दिन। नया वर्ष सावन महीने से शुरू होता है, सावन बदी एकम से। भादवा में या भादवा बदी छठ से कोई वर्ष शुरू नहीं होता। न चन्द्र वर्ष, न सूर्य वर्ष और न कोई अन्य वर्ष ही। भगवती सूत्र (श. 16, उ. 2) में स्पष्ट पाठ है—

"**तत्थणं जेते कालमासा तेणं सावणादीया आसाढ़पज्जवसाणा दुवालस प. त. सावणे, भद्दवए, आसोए, कत्तिए, मग्गसिरे, पोसे, माहे, फागुणे, चेत्ते, वइसाहे, जेट्ठामूले, असाढ़े**।"

आप देख सकते हैं, यह पाठ क्या कहता है? वर्ष भर की जीवनचर्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आलोचना करनी हो, प्रतिक्रमण करना हो, तो वह वर्ष की समाप्ति पर करना चाहिए, जैसा कि दिन, रात्रि एवं पक्ष आदि की समाप्ति पर तत्तत् प्रतिक्रमण किए जाते हैं। इस दृष्टि से पर्युषण पर्व का आषाढ़ पूर्णिमा को होना शास्त्रसिद्ध है।

निशीथभाष्य (गाथा, 3138-39) में पर्युषण के '**परियाय-वत्थवणा, पज्जोसवणा, परिवसणा, पज्जुसणा, पढमसमोसरण**' आदि आठ पर्यायवाची नाम दिए हैं, उनमें 'पढमसमोसरण' की व्याख्या करते हुए महान् श्रुतधर एवं सुप्रसिद्ध चूर्णिकार आचार्य जिनदास ने स्पष्ट लिखा है कि 'दो समोसरणं-**एगं वासासु, वितियं उडुबद्धे, जतो पज्जोसवणातो वरिसं आढप्पति, अतो पढमं समोसरणं भण्णति**' अर्थात् पयुर्षण से वर्ष (वर्षा) शुरू होता है, अतः उसे 'पढम समोसरण' प्रथम समवसरण कहते हैं।

आगे चलकर इसी प्रसंग में फिर लिखा है-'कालेणं आसाढपुण्णिमाकालेणं ठायति।' काल की दृष्टि से आषाढ़ पूर्णिमा के काल में पर्युषण स्थापित होता है।

आचार्य संघदास गणी ने बृहत्कल्प भाष्य में, आचार्य क्षेमकीर्ति ने भाष्य-टीका में भी यही लिखा है-"**आसाढ़ी पुण्णिमोसरणं**' भाष्य गाथा 4284 । '**आषाढ़पूर्णिमायां समवसरणं' पर्युषणं भवति एष उत्सर्गः**।

पर्युषण पर केशलोच की परम्परा है, जो आज भी प्रचलित पर्युषण काल में चालू है। इसका आशय यह है कि पर्युषण पर्व की क्रियाओं में केशलोच भी एक क्रिया है।[7] अब यह देखना है कि केशलोच कब होता था?

निशीथ सूत्र और उसके भाष्य में पर्युषण सम्बन्धी समग्र प्रकरण को देख जाइए, स्पष्ट हो जाएगा कि यदि कोई कारण विशेष न हो तो आषाढ़ी पूर्णिमा के पर्युषण पर लोच करना शास्त्र सम्मत है। केश लोच अप्काय आदि की विराधना से बचने के लिए है, अतः वह वर्षा प्रारम्भ होते ही करना है, और वर्षाकाल में फिर प्रतिदिन करते रहना चाहिए। अतएव उत्तरकालीन टीकाकार श्री विनयविजय जी ने, कल्पसूत्र के केशलोच सम्बन्धी समाचारी सूत्र की व्याख्या करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा है-"**पज्जोसवणाओ परं-पर्युषणातः परं=आषाढ़ चतुर्मासकादनन्तरं गोलोमप्रमाणा अपि केशा न स्थापनीयाः आस्तां दीर्घाः**।"

पर्युषण पर तप की परम्परा है। यदि पर्युषण पर उपवासादि तप न करे, तो निशीथ सूत्र मूल (10-45) और भाष्य प्रायश्चित्त का विधान करते हैं। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप भी गत वर्ष के अन्तमें एवं नववर्ष के प्रारम्भ में आषाढ़ी पूर्णिमा को ही किया जाता था। **'वरिसंते उववासो कायव्वो**, (गाथा 3208)–निशीथ चूर्णि। **वरिसाकालस्स आदीए मंगलं कतं भवति, सड्ढाण य धम्मकहा कायव्वा। पज्जोसवणाए जइ अट्ठमं न करेइ तो चउगुरु....** निशीथ चूर्णि, भाष्य गाथा, 3216-17 ।

पर्युषण पर वार्षिक आलोचना एवं क्षमापना का विधान है। वह भी वर्ष के अन्त में ही करणीय है। इसी प्रसंग में जिनदास महत्तर ने कहा है–**"पज्जोसवणासु वरिसिया आलोयणा दायव्वा। वरिसाकालस्स आदीए'**–निशीथ चूर्णि, भाष्य गाथा, 3216

'उड्डबद्धे वासासु य दुच्चरियं तं वासासु खिप्पं आलोएव्वं'

–निशीथ चूर्णि, गाथा, 3179 ।

'वरिसेण पुढविराती' – निशीथ भाष्य, 3189

'जो दिवस-पक्ख-चाउमासिएसु अणुवसंतो संवच्छरिए उवसमति सो पुढविराइसमाणो' –निशीथ चूर्णि, गाथा, 3189

पर्युषण पर कल्पसूत्र के पठन की परंपरा है, जो आज भी पर्युषण के समय प्रचलित है। प्रश्न है, प्राचीन काल में कल्पसूत्र कब पढ़ा जाता था? कल्पसूत्र में साधु- साध्वी के लिए वर्षाकाल-सम्बन्धी गमनागमन आदि विशिष्ट सामाचारी–नियमों का उल्लेख है, अतः उसे पर्युषणा कल्पसूत्र कहते हैं, जो उसे बृहत्कल्प आदि कल्पसूत्रों से पृथक् करता है। पर्युषण पर कल्पसूत्र के पाठ का स्पष्ट आशय है कि वर्षा के आरंभ में ही संघ को वर्षाकालीन विधिनिषेधों का परिबोध हो जाना चाहिए, स्मृति हो जानी चाहिए, ताकि प्रसंगानुसार नियमों का शुद्ध रीति से पालन हो सके। वर्तमान में पर्युषण भादवा सुदी पंचमी को होता है, जबकि वर्षा समाप्त होने को होती है और तब वर्षा सम्बन्धी विधिनिषेधों के श्रवण एवं पठन का क्या अर्थ रह जाता है? यह तो **'मुण्डनानन्तरं नक्षत्रपृच्छनं'** अर्थात् सिर मुंडाने के बाद मुहूर्त पूछने जैसी बात हैं अतः प्राचीन ग्रंथों की साक्षी है कि पर्युषणा कल्प वर्षावास के आरंभ में आषाढ़ी पूर्णिमा के समय ही पढ़ा जाता था, फलतः उसी समय पर्युषण होता था। इस संबंध में निशीथ भाष्य है– **"आसाढ़ी पुण्णिमोसवणा"**, 3153। इसी भाष्य पर चूर्णि पाठ है– **"तत्थ उ**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसाढ़े पुण्णिमाए ठिया डगलादीयं गेण्हंति पज्जोसवणाकप्पं च कहेंति।" बृहत्कल्प भाष्य में भी ऐसा ही पाठ है– 'आसाढ़ी पुण्णिमोसरणं', 4284 । क्षेमकीर्ति उक्त भाष्य की अपनी टीका में आषाढ़ मास की समाप्ति पर कल्पसूत्र के पठन का एवं पर्युषण का स्पष्ट उल्लेख करते है–**"आषाढ़ शुद्ध दशम्यामेव वर्षाक्षेत्रे स्थितास्ततस्तेषां पंचरात्रेण डगलादौ गृहीते पर्युषणाकल्पे च कथिते आषाढ़पूर्णिमायां 'समवसरणं' पर्युषणं भवति।"**

"आषाढ़ पूर्णिमायां स्थिताः पंचाह[8] यावद् दिवा संस्तारक डगलादि गृह्णन्ति रात्रौ च पर्युषणाकल्पं (कल्पसूत्रं) कथयंति।"

कल्पसूत्र पर्युषणा कल्पसूत्र है, वह वर्षाकाल से सम्बन्धित स्थविर कल्प का निरूपण करता है, अतः कल्पसूत्र का पाठ, बृहत्कल्प भाष्यं एवं निशीथ चूर्णि आदि के अनुसार वर्षावास शुरू होने पर ही करना चाहिए, यह स्वयं कल्पसूत्र के उपसंहार सूत्र से भी प्रमाणित होता है–

"इच्चेइयं संवच्छरियं थेरकप्पं..."

इत्येवं पूर्वोक्तं सांवत्सरिकं=वर्षारात्रिकं स्थविरकल्पम्।"

–कल्पसूत्र कल्पलता, व्या. 9

तं पूर्वोपदर्शितं सांवत्सरिकं = वर्षारात्रिकम् ।"

–कल्पसूत्र सुबोधिका, व्या. 9

आज का पर्युषणकाल, कभी अपवाद था

विधिनिषेधों की क्रियाकाण्ड सम्बन्धी परम्पराएँ देशकालानुसार परिवर्तित होती रहती हैं। यहाँ तक परिवर्तित होती रहती हैं कि विधान के स्थान में निषेध , और निषेध के स्थान में विधान चालू हो जाता है। उत्सर्ग, जो एक सामान्य रूप से हमेशा किया जाने वाला आचार है, वह अपवाद हो जाता है, और अपवाद, जो एक विशेष परिस्थिति में कभी-कभार किया जाने वाला आचार है, वह उत्सर्ग का, सामान्य पक्ष का रूप ले लेता है।

पर्युषण के कालसंबंधी विधान की भी यही स्थिति हुई है। प्राचीनकाल में आषाढ़ पूर्णिमा को पर्युषण होता था, वह उत्सर्ग था, एक सामान्य विधान था। संयमी भिक्षु को वर्षावास के आरंभ में ही यदि वर्षावास की स्थिति के योग्य अनुकूल क्षेत्र मिल जाता है, वर्षा होने पर साधू के निमित्त उसे व्यवस्थित एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठीक-ठाक करने के लिए आरंभ-समारंभ होने जैसा कुछ भी प्रपंच न हो, तो साधू आषाढ़ पूर्णिमा को ही पर्युषण कर ले। यदि ऐसा अनुकूल क्षेत्र या मकान न मिले, तो फिर आसपास योग्य क्षेत्र एवं मकान तलाश करता रहे, और जब भी अनुकूल मिल जाए, तब पर्युषण कर ले। पर्युषण करते समय पर्व दिन का ध्यान अवश्य रखे। सावन बदी एकम से पाँच-पाँच दिन के क्रम से पर्व दिन होता है, अतः पाँच-पाँच दिन की वृद्धि के क्रम से अन्तिम एक महीना बीस रात्रि व्यतीत होने पर भाद्रपद शुक्ला पंचमी को तो पर्युषण अवश्य कर ही लेना चाहिए। मकान न मिले, तब भी क्या, वृक्ष के नीचे ही रहकर पर्युषण अर्थात् वर्षावास के शेष जघन्य 70 दिन बिताए। उक्त कथन पर से स्पष्ट है कि एक महीना बीस रात्रि वाला उल्लेख कारणिक है, विशेष परिस्थिति मूलक है, अतः अपवाद है। इस संबंध में अमर भारती के गत पर्युषण विशेषांक में विस्तार के साथ प्रमाण उपस्थित कर चुका हूँ। संक्षेप में पुनः स्मृति के लिए कुछ प्रमाण इस प्रकार है-

"एत्थ उ पणगं पणगं कारणियं जाव सबीसतीमासो।"

—निशीथ भाष्य, 3152

"ततो सावण बहुल पंचमीए पज्जोसवेति, खेत्ताभावे कारणे पणगे संवुड्ढे दसमीए पज्जोसवेंति, एवं पण्णरसीए। पणगबुड्ढीए ताव कज्जति जाव सवीसतिमासो पुण्णा, सो य सवीसतिमासो च भद्दवयसुद्धपंचमीए पुज्जति।"

—निशीथ चूर्णि, 3152

"आषाढ़ पुण्णिमाए पज्जोसवेंति, एस उस्सग्गो। सेसकालं पज्जोसवेंताण अववातो। अववाते वि सवीसतिरातमासातो परेण अतिक्कमेउं ण वट्टति। सवीसतिराते मासे पुण्णे जति वासखेत्तं ण लब्भति तो रुक्खहेट्ठा वि पज्जोसवेयव्वं।"

—निशीथ चूर्णि, 3153

"एवं कारणिकं रात्रिदिवानां पञ्चकं पञ्चकं वर्धयता तावद् नेयं यावत् सविंशतिरात्रो मासः पूर्णः। आषाढ़पूर्णिमायां 'समवसरणं' पर्युषणं भवति एष उत्सर्गः। शेषकालं पर्युषण मनुतिष्ठतां सर्वोऽप्यपवादः। अपवादेऽपि सविंशतरात्राद् मासात् परतो नातिक्रमयितुं कल्पते। यद्य तावत्यपि गते वर्षाक्षेत्रं न लभ्यते ततो वृक्षमूलेऽपि पर्युषणयितव्यम्।" —बृहत्कल्प भाष्य टीका, 8284

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"इय सत्तरी जहण्णा, असिती णउई दसुत्तरसयं च।"

—बृहत्कल्प भाष्य, 4285

"ये किल आषाढ़पूर्णिमायाः सविंशतिरात्रे मासे गते पर्युषणयन्ति तेषां सप्ततिदिवसानि जघन्यो वर्षावासावग्रहो भवति। भाद्रपदशुक्लपंञ्चम्या अनन्तरं कार्तिकपूर्णिमायां सप्ततिदिनसद्भावात्...

भाद्रपदामावास्यां पर्युषणे क्रियमाणे पंचसप्ततिर्दिवसाः, भाद्रपदबहुलपञ्चम्यां पञ्चासीतिः श्रावणशुद्धदशम्यां पञ्चनवतिः, श्रावणामावास्यां पञ्चोत्तरं शतम् श्रावणबहुलपञ्चम्यां पञ्च दशोत्तरं शतम्। आषाढपूर्णिमायां तु पर्युषिते विंशत्युत्तरं दिवस-शतम्।" —बृहत्कल्प, भाष्य टीका, 4285

इयणिं पंचगपरिहाणिमधिकृत्य कालावग्रहोच्यते-

इय सत्तरी जहण्णा असिती, नउती दसुत्तरसयं च।

जति वासति मग्गसिरे, दसरायं तिन्नि उक्कोसा।

चउण्हं मासाणं वीसुत्तरं दिवससतं भवति। सवीसतिमासो पण्णासं दिवसा ते वीसुत्तरसयमज्झाओ सोहिया, सेसा सत्तरी।

जे आषाढ़चाउम्मासियातो सवोसतिमासे गते पज्जोसवेंति, तेसिं सत्तरी दिवसा जहण्णो वासकालोग्गहो भवति...."

—निशीथ भाष्य, चूर्णि, 3154

कल्पसूत्र में जो भगवान् महावीर के नाम से '**समणे भगवं महावीरे...** के रूप में एक महीना बीस रात्रि वाला पाठ ळे, वह कल्पसूत्रकार के स्वयं के शब्दों में कारणिक्र है, अतः अपवाद है, उत्सर्ग नहीं। उक्त पाठ के अनंतर शिष्य के द्वारा प्रश्न उपस्थित किया गया है कि श्रमण भगवान् महावीर ने एक महीना 20 रात्रि बीतने पर पर्युषण=वर्षावास किया, यह किस हेतु से कहा जाता है—**से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चई-समणे भगवं महावीरे वासाणं...?**' उक्त शंका के उत्तर में कल्प सूत्रकार 'जओ' शब्द का, जिसका अर्थ संस्कृत में 'यतः, और हिन्दी में 'क्योंकि' होता है, प्रयोग करते हुए कहते हैं कि "**जओ णं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं, क्कुंपियाइं, छन्नाइं, लित्ताइं, घट्टाइं, मट्ठाइं, संपधूमियाइं, खाओदगाइं, खायनिद्धमणाइं, अप्पणो अट्ठाए परिणामियाइं भवंति से तेणट्ठेणं एवं वुच्चई—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ।**"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त पाठ का संक्षेप में भावार्थ यह है कि चूँकि इस समय तक गृहस्थ स्वयं अपने लिए प्राय: अपने मकानों को छत के रूप में आच्छादित कर लेते हैं, लीप लेते हैं, जल निकालने के लिए मोरी आदि ठीक कर लेते हैं, इत्यादि व्यवस्था हो जाने पर साधु को निर्दोष मकान मिल जाता है। ऐसे व्यवस्थित मकान में साध के निमित्त से फिर आरंभ आदि कुछ नहीं करना पड़ता, अत: वहाँ पर्युषण हो सकता है। इसका अर्थ है कि यदि प्रारंभ में ही मकान एवं क्षेत्र ठीक मिल जाए, तो आषाढ़ी पूर्णिमा आदि के दिन कभी भी पाँच-पाँच दिन के क्रम से पर्युषण कर सकता है। इसीलिए उक्त प्रसंग में ही आगे कहा है कि 'अंतरा वि य से कप्पइ, नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए।' अर्थात् आषाढ़ पूर्णिमा से लेकर भादवा सुदी पंचमी तक बीच के पर्व दिनों में भी कभी पर्युषण कर सकते हैं, किन्तु भाद्रपद शुक्ला पंचमी की रात्रि को लांघ कर आगे नहीं कर सकते। आज तो प्राय: सर्वत्र पहले से ही व्यवस्थित भवन मिल जाते हैं, अत: अकारण 50 दिन तक आगे बढ़ना क्या अर्थ रखता है? अब तो आषाढ़ पूर्णिमा को वर्षावास-पर्युषण कर लेते हैं, गृहस्थ जनों को भी पहले से ही चातुर्मास करने की बात मालूम हो जाती है, फिर 50 दिन बाद सिर्फ एक वार्षिक प्रतिक्रमण के लिए, जो कि सिद्धांतानुसार वर्ष की समाप्ति पर आषाढ़ पूर्णिमा को ही कर लेना चाहिए, पुन: पर्युषण करना, कितना न्यायोचित है, कभी सोचा है इस संबंध में कुछ? प्रचलित मान्यता के पक्ष में व्यर्थ ही आधारहीन असत् कल्पनाएँ संयमी जीवन के लिए कितनी विघातक हैं, निर्मल मन से कुछ विचारना तो चाहिए। असत्य असत्य है, फिर भले ही वह सांसारिक कार्यक्षेत्र में बोला जाए, या तथाकथित श्रद्धा के नाम पर धर्म के क्षेत्र में बोला जाए। यदि गहराई से विचार किया जाए, तो सांसारिक क्षेत्र की अपेक्षा धर्म के क्षेत्र में असत्य का प्रयोग करना, अधिक भयावह है, अधिक पापवर्द्धक है।

प्राचीन आचार्य ही नहीं, अर्वाचीन आचार्य, उपाध्याय एवं अन्य विद्वान मुनि भी, पर्युषण के संबंध में यही सब कुछ कहते तथा लिखते आ रहे हैं, यद्यपि उनकी अपनी सांप्रदायिक मान्यताएँ पूर्व पक्ष से काफी बदली हुई हैं। उपाध्याय समयसुंदर ने कल्पसूत्र की अपनी कल्पलता व्याख्या में भाद्रपद शुक्ला पंचमी को पर्युषण करने की बात, वर्षानुकूल क्षेत्र के अभाव में ही स्वीकार की है। उन्होंने जघन्य 70 दिन का चौमास माना है। इस 70 दिन के चौमास में भी अशिव, रोग, राजा की दुष्टता, भिक्षा का अभाव आदि कारणों से अन्यत्र विहार करने का उल्लेख किया है:

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"श्री आदिनाथ महावीर साधूनां वर्षाया अभावेऽपि क्षेत्र सद्भावे उत्कृष्टतः चतुर्मासिकस्थितिरूपः पर्युषणाकल्पः प्रोक्तः।

क्षेत्रस्य अभावे तु भाद्रपद सुदि पंचमी यावत् क्षेत्र गवेषणा कार्या, भाद्रपद सुदिपंचमीतः आरभ्य सप्तति (70) दिनस्थितिरूपोऽवश्यं कर्तव्य एव।

तत्राऽप्ययं विशेषो, यथा-कदाचित् अशिवमुत्पद्यते, भिक्षा वा न लभ्यते, राजा वा दुष्टो भवति, ग्लानत्वं च जायते तदा सप्ततिदिनेभ्य अर्वागपि अन्यत्र गमने कारणत्वान्न दोषः।

आचार्य कालक का इतिहास भी उक्त प्राचीन पक्ष का ही समर्थन करता है। कालकाचार्य उज्जयिनी में वर्षावास कर रहे थे, परन्तु वहाँ तत्कालीन राजा के विरोध के कारण उज्जयिनी से प्रतिष्ठान पुर को वर्षावास करने के लिए विहार कर दिया और प्रतिष्ठापुर के श्रमण संघ को सूचना दिला दी कि जबतक मैं आऊँ तबतक आप पर्युषण न करें–"**पतिट्ठानसमणसंघस्स य अज्जकालकेहिं संदिट्ठं जावाहं आगच्छामि ताव तुज्झेहिं णो पज्जोसियव्वं**"[9]

–निशीथ चूर्णि, दशमोद्देशक।

उक्त पाठ में आचार्य ने प्रतिष्ठानपुर के साधु संघ को जो यह सूचना दी कि मैं जबतक आऊँ तबतक पर्युषण न करें, इसका क्या अर्थ है? जब पर्युषण आज के अनुसार एकान्तरूप से भादवा सुदि पंचमी को ही होता था, पहले नहीं, तो उनके द्वारा 'पहले न करना' यह क्या सूचित करता है? यही तो सूचित करता है कि पर्युषण क्षेत्रीय परिस्थिति के अनुसार भादवा सुदि पंचमी से पहले, बहुत पहले भी होता था। आषाढ़ पूर्णिमा से लेकर 50 दिन तक कभी भी पर्व के दिन हो सकता था।

पर्युषण का शब्दार्थ

पर्युषण का मूल शब्दार्थ रहना है, स्थित होना है। 'वस' धातु निवास अर्थ में है। अतः शब्दार्थ की दृष्टि से भी 'वर्षाकाल में साधू का एकत्र निवास' ही पर्युषण का मौलिक अर्थ प्रतिफलित होता है। आचार्य अभयदेव ने समवायांग (70) में '**पज्जोसवेइ**' का संस्कृतार्थ '**परिवसति**' किया है। पूज्य श्री घासीलालजी ने भी अपनी समवायांगटीका में '**पज्जोसवेइ**' का अर्थ 'परिवसति' ही किया है। '**परिवसति**' का अर्थ निवास करना है, रहना है, यह साधारण दशवीं कक्षा का संस्कृतपाठी बालक भी बता सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पसूत्र के टीकाकार श्री विनयविजयजी और श्री समयसुन्दर जी ने भी यही अर्थ किया है:

"उष् निवासे' इति आगमिको धातुः 'वस् निवासे' गणसंबंधिको वा।"

—कल्पलता, व्याख्यान 9

"पज्जोसणाकप्पेति' परि—सामस्त्येन उषणा—वसनं पर्युषणा।"

—सुबोधिका, व्याख्यान 9

"वासावास पज्जोसवियाणं'—वर्षाकाले पर्युषितानां—स्थितानाम्।"

—कल्पलता, व्या. 9

"वर्षावास चतुर्मासक पर्युषितानां—स्थितानाम्।"

—सुबोधिका, व्याख्यान 9

क्या पर्युषण दो हैं, दो काल में हैं?

पर्युषण संबंधी मेरे विचारों की चर्चा, बिना मेरे नामोल्लेख के जिनवाणी (मार्च-अप्रैल 70) में हुई है। उसमें मेरे वर्षावास रूप पर्युषण के अपवाद पक्ष को तो स्वीकार किया है, भले ही वह अस्पष्ट शब्दावली में हो, परंतु वर्तमान सांप्रदायिक मान्यता का आग्रह नहीं टूट पाया है, अतः पर्युषण के दो रूप उपस्थित किए हैं, एक, वर्षाकाल में एकत्र रहना, और दूसरा, वार्षिक पर्व (संवत्सरी) और उपसंहार में लिखा है—"इनमें वार्षिक पर्व रूप पर्युषण भाद्रपद शुक्ला पंचमी को होता है, आदि। प्रथम अर्थ में वर्षावास लिया गया है, जिसका जघन्यकाल 70 रात्रि है और उत्कृष्ट काल 4 मास माना गया है।" अपने उक्त मत के पक्ष में कल्पसूत्र की सुबोधा या सुबोधिका-व्याख्या में से एक अंश उद्धृत किया है—**"तत्र पर्युषणाशब्देन सामत्स्येन वसनं वार्षिक पर्व हय अपि कथ्यते। तत्र वार्षिक पर्व भाद्रपद सित पञ्चम्याम्।"**

यह उल्लेख श्री विनयविजयजी का है, जो बहुत उत्तरकालीन 17वीं शती के सुप्रसिद्ध मुनि हैं। यह युग सांप्रदायिक आग्रह का युग था। यही कारण है कि उन्होंने अपने समय में प्रचलित अधिक श्रावण-भाद्रपद मास के द्वंद्व का भी खूब खुलकर खंडन किया है। दो सावण होने पर दूसरे श्रावण में संवत्सरी करने वालों की प्रताड़ना कर के भादवा में ही संवत्सरी करने के अपने पक्ष का बड़े ही घटाटोप से मंडन किया है।[10] मैं समझता हूँ, यह विचार तो जिनवाणी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्य नहीं होगा, क्योंकि उसके अपने अभिमत पक्ष से विपरीत जो है। अस्तु जैसे कि यह अधिक श्रावण-भाद्रपद का मत श्री विनयविजयजी की अपनी संप्रदाय की मान्यता से प्रभावित है, उसी प्रकार वर्षावास और वार्षिक पर्व के रूप में दो पर्युषण और उनके परस्पर विभिन्न काल भी तत्कालीन संप्रदायों की रूढ़ मान्यताओं से ही प्रभावित एवं प्रेरित हैं। क्योंकि निशीथ भाष्य, निशीथ चूर्णि, बृहत्कल्प भाष्य, बृहत्कल्प भाष्य टीका, समवायांग सूत्र की अभयदेव सूरि कृत टीका-इत्यादि अद्यावधि अध्ययन में आए प्राचीन ग्रंथों में, जिनमें कि पर्युषण संबंधी विस्तृत एवं मौलिक चर्चा है, कहीं भी इस प्रकार पर्युषण के दो भेद और उनके दो विभिन्न काल देखने में नहीं आए हैं। यदि ऐसा कुछ होता तो वे महान् श्रुतधर आचार्य अवश्य उल्लेख करते। अतः उनके समक्ष श्री विनय विजयजी की मान्यता को नहीं दिया जा सकता।

प्राचीन आचार्यों ने, जिनके अनेक उद्धरण मैं पीछे दे आया हूँ, वर्षावास के साथ ही वार्षिक आलोचना एवं क्षमापना का जिक्र किया है। पर्युषण एक ही है वर्षावास रूप। उसके साथ आलोचना, क्षमापना, कल्पसूत्र वाचन, तप और केशलोच आदि कुछ क्रियाएँ हैं, जो पर्युषण के अंग स्वरूप हैं, साधुसंघ के लिए करणीय हैं। और उक्त सब क्रियाएँ पूर्वनिर्दिष्ट उद्धरणों के अनुसार, प्राचीन आचार्यों ने वर्षावास रूप पर्युषण के साथ ही करनी बताई हैं, उनके लिए भिन्न काल का कोई उल्लेख नहीं है।

श्री विनय विजयजी की वार्षिक पर्व वाली बात तो तब प्रामाणिक मानी जाती, जब कि आषाढ़ पूर्णिमा को वर्षावास बैठता, और उस समय वर्ष पूरा नहीं होता, भादवा में होता, फलतः आषाढ़ पूर्णिमा को वर्षावास=चौमास बैठाकर, वार्षिक आलोचना के लिए सुदीर्घ भादवा का महीना पकड़ा जाता। जैन परंपरा के अनुसार वर्ष आषाढ़ में पूर्ण होता है। यह हम भगवती सूत्र का उद्धरण देकर पीछे सिद्ध कर आए हैं। अतः सिद्ध है कि वार्षिक पर्वरूप पर्युषण भी आषाढ़ पूर्णिमा को ही होता था।

श्री विनय विजयजी स्वयं भी एक तरह से, पर्युषण आषाढ़ पूर्णिमा को ही मानते हैं। वार्षिक केशलोच भी पुर्यषण क्रियाकाण्ड का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसका पालन आज भी वर्तमान पर्युषण के साथ किया जाता है। कल्पसूत्र की अपनी टीका में विनय विजयजी ने उक्त केशलोच का काल वर्षावास से पूर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आषाढ़ चातुर्मासी ही माना है, जैसा कि हम पीछे वह उद्धरण दे आए हैं–**पर्युषणातः परं–आषाढ़चतुर्मासकादनन्तरं गोलोमप्रमाणा अपि केशा न स्थापनीयाः.....।"**

क्षेत्रादि के अभाव में पर्युषण के लिए पाँच-पाँच दिन की अभिवृद्धि करते हुए अंत में भाद्रपद शुक्ला पंचमी को आपवादिक पर्युषण की प्राचीन परंपरा का उल्लेख श्री विनय विजयजी ने सुबोधिका में किया है और लिखा है कि वह विधि संघ की आज्ञा से समाप्त कर दी गई।[11] समाप्त भले ही कर दी गई हो, और अब वह समाप्त ही है। परंतु इससे इतना तो पता चलता है कि प्राचीन काल में यह परंपरा थी।

उक्त चर्चा पर से वह निष्कर्ष फलित होता है कि पर्युषण एक ही था, आषाढ़ पूर्णिमा का, उसी के साथ वार्षिक आलोचना भी होती थी, अलग नहीं। अतः विनय विजयजी का वार्षिक पर्व का, वर्षावास पर्युषण से भिन्नता के रूप में उल्लेख, तत्कालीन प्रचलित मान्यता से प्रभावित है, सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक नहीं।

समवायांग सूत्र का पाठ : जिसकी बड़ी चर्चा है

समवायांग सूत्र के 70 वें समवाय का पर्युषण संबंधी पाठ काफी समय से चर्चा का केन्द्र है, दो सावण या दो भादवा होने पर दूसरे सावण में एवं पहले भादवा में संवत्सरी पर्व मनाने वालों के द्वारा उक्त पाठ को जब तब आगे लाया जाता है, फलतः एक महीना बीस रात्रि अर्थात् पचास दिन का, हालांकि मूल में 50 दिन का शब्दशः उल्लेख नहीं है, काफी हल्ला रहता है। और कभी-कभी तो इसी पर आराधक और विराधक का फैसला भी सुनाया जाने लगता है।

यह पाठ 70 वें समवाय में है, 50 वें समवाय में नहीं। इसका स्पष्ट भाव है कि सूत्रकार आगे के 70 दिन को पर्युषण के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं, और यह जघन्य 70 दिन के वर्षावास अर्थात् चातुर्मास की ओर ही संकेत है। इस पर से साफ है कि यह पाठ वर्षावास रूप पर्युषण का ही है, वर्षावास से भिन्न तथाकथित वार्षिक पर्व का नहीं।

समवायांग सूत्र के टीकाकार सुप्रसिद्ध श्रुतधर नवांगी वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि हैं। समवायांग सूत्र के उक्त पर्युषण सूत्र पर उन्होंने अपनी टीका में वर्षावास रूप पर्युषण की ही चर्चा की है। जिनवाणी और सम्यग्दर्शन के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपादित वार्षिक पर्व की तो वहाँ गंध तक नहीं है। एक शब्द भी तो ऐसा नहीं है, जिस पर इतना हल्ला है। पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ मूल पाठ सहित टीका शब्दशः उद्धृत कर रहे हैं।

"समणे भगवं महावीरे वासाण सवीसराए मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।"

टीका-वर्षाणां=चतुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशतिरात्रे=विशतिदिवसाधिके मासे व्यतिक्रान्ते=पञ्चाशति दिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः। सप्तत्यां च दिनेषु शेषेषु भाद्रपद शुक्ल पञ्चम्यामित्यर्थः। वर्षासु आवासो वर्षावासः=वर्षास्थानं 'पज्जोसवेइ'=परिवसति=सर्वथा वासं करोति। पञ्चाशति प्राक्तनेषु दिवसेषु तथाविध वसत्यभावादिकारणे स्थानान्तरमप्याश्रयति। भाद्रपद शुक्लपञ्चम्यां तु वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृदयम्।

साधारण संस्कृतज्ञ भी देख सकता है कि टीकाकार अभयदेव क्या कहते हैं? 'वर्षासु आवासो वर्षावासः वर्षास्थानं, पज्जोसवेइ=परिवसतिं–सर्वथा वासं करोति' का भाव है कि "बीस रात्रि सहित एक महीना बीतने पर वर्षावास–वर्षाकाल में एकत्र निवास, अर्थात् चौमास करना। आगे के शब्दों का भाव है कि पहले के 50 दिनों में तो साधु के योग्य वसति अर्थात् मकान का अभाव आदि कारण हों तो साधु स्थानान्तर भी कर सकता है, स्थान बदल सकता है, किन्तु भाद्रपद शुक्ला पंचमी से तो वृक्ष के नीचे भी वर्षावास के लिए निवास करे, एक ही जगह रहे, स्थान न बदले।" विचारशील पाठक देख सकते हैं, यह वर्षावास करने का सूत्र है या वार्षिक पर्व का? वार्षिक पर्व का तो एक शब्द भी नहीं है। इस पर भी बड़े अहं में आकर सम्यग्दर्शन लिखता है कि "कविजी ने.... समवायांग का मूल पाठ तो ठीक दिया, किन्तु उस मूल पाठ का जो भाव बतलाया वह असत्य है। .... इस असत्य का कारण सामान्य पाठकों को अंधेरे में रखना है। पाठकों को अंधेरे में मैं रख रहा हूँ, या सम्यग् दर्शन? मैंने तो टीका के आधार पर पर्युषण का वर्षावास में स्थित रहना'–अर्थ किया था। इस संबंध में किसी भी संस्कृतज्ञ सज्जन से पूछा जा सकता है कि मूल के '**वासावासं**' और टीका के 'वर्षावस्थानं' का क्या अर्थ है? '**पज्जोसवेइ**' का टीकाकार ने '**परिवसति**' और परिवसति का फिर '**सर्वथा वासं करोति**' जो अर्थ किया है, वह क्या है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह मेरे अर्थ के अनुकूल है, या सम्यग्दर्शन के? सम्यग् दर्शन में अर्थ किया है—"श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षा के मासयुक्त बीस रात्रि व्यतीत होने पर और वर्षावास के सत्तर दिन शेष रहने पर पर्युषण किया।" यह कैसा विचित्र अर्थ है। मैं अर्थ की अन्य भूलों की ओर न जाकर प्रस्तुत की ही चर्चा कर रहा हूँ। **'वर्षावास के सित्तर दिन शेष रहने पर'** इसमें वर्षावास के साथ षष्ठी विभक्ति कहाँ है, जिसका संबंध सत्तर दिन से जोड़ते हैं। सत्तर दिन का संबंध पहले के 'वासाणं' के साथ है, वर्षावास के साथ नहीं। मूल में वर्षावास के लिए तो द्वितीया विभक्ति है, जिसका सम्बन्ध पज्जोसवेइ के साथ है। वर्षावास, **'पज्जोसवेइ'** –**'परिवसति'** का कर्म है। अत: 'वासावासं पज्जोसवेइ' का सही अर्थ होता है, 'वर्षावास के प्रति निवास करना'। इसीलिए टीकाकार ने उपसंहार वाक्य में 'सर्वथा वासं करोति' अर्थ किया है, जैसा कि मैंने हिन्दी में अर्थ किया है—'वर्षावास में स्थित रहना'। मालूम होता है, सम्यग्दर्शन तथा उसके सहयोगियों को क्या तो प्राकृत तथा संस्कृत का परिबोध नहीं है। यदि परिबोध है तो वह निश्छल भाव से सही सत्यस्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। व्यर्थ ही प्रचलित मान्यताओं के व्यामोह में भद्र जनता को असत्य के सघन अंधेरे में गुमराह कर रहे हैं। यह श्रद्धा के नाम पर सत्य के साथ नग्न खिलवाड़ है, जिसे भविष्य का इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा।

समवायांग सूत्र के आधुनिक टीकाकार पूज्य श्री घासीलालजी हैं। पूज्य श्री समवायांग के उक्त पर्युषण संबंधी सूत्र का हिन्दी और गुजराती अर्थ करते हुए तो गड़बड़ा गए हैं, मूलानुसारी ठीक अर्थ नहीं किया है। मालूम होता है, प्रचलित मान्यता के कारण जनश्रद्धा के नाम पर कुछ विभ्रम में पड़ गए हों। यह विभ्रम ही है कि संस्कृत में कुछ अर्थ है तो हिन्दी में कुछ और, तथा गुजराती में कुछ और ही।

हिन्दी में अर्थ है—श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षाकाल के एक महीना बीस दिन बीतने पर पर्युषण किया और अवशिष्ट 70 सत्तर दिन रहने पर वर्षाकाल-चातुर्मास पूरा किया।

गुजराती में अर्थ है—श्रमण भगवान् महावीर चौमासाना 1 एक मास अने बीस दिवस व्यतीत थया पछी पर्युषण कर्या अने बाकीना सित्तेर दिवस पूरा थतां चातुर्मास पूर्ण कर्युं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठक देख सकते हैं, कितना अंतर है दोनों में? हिन्दी में है '70 दिन रहने पर अर्थात् बाकी रहने पर चातुर्मास पूरा किया'। यह क्या अर्थ है? क्या भादवा सुदी पंचमी को वर्षाकाल चौमास पूरा कर दिया और फिर ग्रामानुग्राम विहार करने लगे? गुजराती में इसके विपरीत अर्थ किया है—बाकीना सित्तेर दिवस पूरा थतां चातुर्मास पूर्ण कर्युं। मूल पाठ में तो ऐसा कुछ नहीं है कि 70 दिन पूर्ण होने पर चौमास पूरा किया। यह अद्भूत अर्थ कहाँ से, मूलसूत्र के किन शब्दों में तैयार किया है? कहीं से भी तो नहीं। यह तो प्रचलित सांप्रदायिक मान्यता की उलझन है। और इस प्रकार की उलझनों में उलझे मुनिराजों से, फिर वे कोई भी क्यों न हों, सत्य की रक्षा का क्या भरोसा किया जा सकता है? यही कारण है कि श्रद्धा के नाम पर शास्त्रों, आगमों या ग्रंथों के सर्वथा असंगत एवं विपरीत अर्थ कर दिए जाते हैं और मुग्ध जनता इन अर्थों की जर्जर लाठी पकड़े अंधकार में ठोकर खाती फिरती है।

पूज्यश्री हिन्दी और गुजराती में तो गड़बड़ा गए हैं, किन्तु उन्होंने संस्कृत टीका में आचार्य अभयदेव का ही अनुसरण किया है। प्राय: उसी शब्दावली का प्रयोग किया है। लिखा है—

"श्रमणो भगवान् महावीर: 'वासाणं' वर्षाणां वर्षाकालस्य 'सवीसइराए मासे वइक्कंते' सविंशतिरात्रे मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशद्दिनेष्वतीतेषु इत्यर्थ:, 'सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं' सप्ततौ रात्रिन्दिवेषु—सप्ततिदिनेष्ववशिष्टेषु 'वासावासं' वर्षावासं—वर्षास्वावासस्तं वर्षावासं वर्षाकालावस्थितिमित्यर्थ:, 'पज्जोसवेइ' परिवसति।"

उपर्युक्त संस्कृत टीका को स्वयं ध्यान से पढ़िए, या किसी संस्कृतज्ञ विद्वान् से पढ़वा लीजिए, पूज्य श्री घासीलालजी का हृदय स्पष्ट हो जाएगा। 'वासावासं' का अर्थ वर्षावास किया है, जिसका स्पष्टीकरण उन्हीं शब्दों में है—'वर्षाकालावस्थिति' अर्थात् वर्षाकाल में अवस्थिति, और पज्जोसवेइ का अर्थ है—परिवसति। टीका में एक शब्द भी आज के तथाकथित वार्षिक पर्व का नहीं है।

समवायांग सूत्र के उक्त 'समणे भगवं महावीरं' के मूल पाठ का, जिसके संबंध में जिनवाणी और सम्यग्दर्शन का यह उद्घोष है कि यह वार्षिक पर्वरूप पर्युषण - संबंधी पाठ है, देखिए, जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर (सं 1995) से प्रकाशित समवायांग के गुजराती अनुवाद में क्या अर्थ किया है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलार्थ–"श्रमण भगवान् महावीर स्वामीए वर्षाऋतुना वीश दिवस सहित एक मास व्यतीत थये सते अने सीतेर रात्रिदिवस शेष रहे सते वर्षावास प्रत्ये निवास कर्यो (चौमासु रह्या) (आ हकीकत पर्युषणामाटे समजवी)"

उक्त संस्करण में ही अभयदेव सूरि की टीका का भी अनुवाद है–"समणे इत्यादि"–वर्षाना एटले चार मासना वर्षाकाल ना वीश रात्रि सहित एटले वीश दिवस अधिक एक मास व्यतीत थये सते अर्थात् पचास दिवसो गये सते तथा सीतेर रात्रि दिवस शेष रहे सते, अर्थात् भाद्रपदनी शुक्ल पंचमी ने वर्षावास प्रत्ये एटले वर्षाकाल ना अवस्थान प्रत्ये 'पज्जोसवेइ त्ति परिवसति' एटले सर्वथा प्रकारे निवास करे छे।

पहेलाना पचास दिवसो मां तथा प्रकारनी (रहवाने योग्य) वसति नो अभाव विगेरे कारण होय तो बीजा स्थाननो पण आश्रय करे छे, परन्तु भाद्रपद शुक्ल पंचमीए (पंचमी थी) तो वृक्षनी नीचे विगेरे कोई पण स्थले (निश्चित) निवास करे छे, ए आनुं तात्पर्य छे।"

उक्त अनुवाद के कर्ता श्वेताम्बर परम्परा के विद्वान् हैं, जो वर्तमान में पर्युषण के प्रचलित पक्ष को ही मानने वाले संप्रदाय से सम्बन्धित हैं। मैं उनका अभिनन्दन करूँगा कि वे सत्य के प्रति कितने निष्ठावान हैं। अपनी वर्तमान परम्परा के विपरीत होते हुए भी उन्होंने प्राचीन उल्लेखों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं, अस्पष्ट भाषा में उलझाया नहीं। जो सत्य था, उसे स्पष्ट शब्दों में लिखा। मैं नम्र निवेदन करूँगा कि हमारे पक्ष के विद्वान् भी प्रामाणिकता से काम लें। अपनी प्रचलित मान्यताओं के व्यामोह में सत्य का अपलाप न करें, ऐतिहासिक मूल उल्लेखों को तोड़े-मरोड़े नहीं।

क्या भगवान् महावीर प्रतिक्रमण करते थे?

जिनवाणी, सम्यग्दर्शन तथा हिन्दी गुजराथी में पूज्य श्री घासीलालजी और दूसरे भी कितने ही महानुभाव समवायांग सूत्र के उक्त बहुचर्चित पाठ का अर्थ करते हुए काफी गड़बड़ा गए हैं। सम्यग्दर्शन लिखता है–"श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षावास के सित्तर रात्रि दिन शेष रहने पर पर्युषण किया।" जिनवाणी लिखती है–"श्रमण भगवान् महावीर ने 1 मास 20 दिन रात्रि बीतने पर चातुर्मास के 70 रात्रि दिन शेष रहने पर पर्युषण किया।" पूज्य श्री घासीलाल जी भी, जैसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि पहले लिख आए हैं, काफी गड़बड़ के बाद यही लिखते हैं कि "श्रमण भगवान् महावीर ने पर्युषण किया।" सम्यग्दर्शन की भूल समझ में आ सकती है, चूँकि उसका लेखक संस्कृत प्राकृत का अभ्यासी विद्वान् नहीं है। परन्तु मुझे तो आश्चर्य होता है, जिनवाणी के विद्वान् लेखक तथा समवायांग सूत्र के अर्थकार पूज्य श्री पर कि वे कैसे खोटा सिक्का बाजार में चला रहे हैं। क्या यही धर्म श्रद्धा की सुरक्षा का पथ है? वर्षावास शब्द और पज्जोसवेइ के साथ उसके व्याकरण सम्मत सम्बन्ध को साफ डकार जाते हैं, उसका उल्लेख तक नहीं करते। कैसे करें? वह साफ-साफ उनकी मान्यता को मूल से ही जो उखाड़ देता है। खैर !

मैं उक्त लेखको से पूछता हूँ, आप पर्युषण का वर्षावास अर्थ तो आषाढ़ पूर्णिमा को मान लेते हैं। उस वर्षावास का भादवा सुदी पंचमी से कोई सम्बन्ध नहीं है। आपकी दृष्टि में उक्त पंचमी का पर्युषण वार्षिक पर्व है, ओर इसके लिए समवायांग सूत्र के पाठ को आप उद्धृत करते हैं। मैं पूछता हूँ, आपके लेखानुसार श्रमण भगवान् महावीर ने उक्त पंचमी के दिन वर्षावास नहीं, अपितु वार्षिक पर्वरूप पर्युषण किया, तो भगवान् ने क्या पर्युषण किया? क्या भगवान् ने उस दिन, जैसा कि आप हम सब करते हैं, अपनी भूलों की, अपने चारित्र-सम्बन्ध ी अतिचारों की आलोचना की? संवत्सरी प्रतिक्रमण किया? बताइए तो सही वार्षिक पर्व के रूप में क्या किया? तीर्थंकर केवली का चारित्र निरतिचार चारित्र होता है, उनके अप्रमत्त संयम जीवन में दोष नहीं लगते, अतिचार नहीं लगते। अत: वे प्रतिक्रमण नहीं करते। कहाँ देख लिया—यह तीर्थंकर केवल ज्ञानियों के द्वारा वार्षिक पर्व का मनाना, आलोचना-प्रतिक्रमण करना? क्या कहीं पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज की वह भूल ही तो आपको तंग नहीं कर रही है, जो उन्होंने सम्वायांग सूत्र के उक्त पाठ के अनुवाद में की है। उन्होंने लिखा है—

"श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने वर्षाकाल के चार मास में से एक मास और 20 दिन व्यतीत हुए पीछे व चातुर्मास के 70 दिन शेष रहते संवत्सरी प्रतिक्रमण किया।"

—सम॰ पृ॰ 176

पूज्य ऋषिजी तो प्राकृत भाषा के विद्वान नहीं थे, संस्कृत टीका भी उन्होंने नहीं पढ़ी थी, और इधर प्रचलित मान्यता उनके समक्ष थी, अत: उन्होंने पर्युषण का सीधा अर्थ 'संवत्सरी प्रतिक्रमण' लिख छोड़ा। किन्तु आप तो ऐसे नहीं है। आपसे यह सब कैसे होता है? मान्यता का व्यामोह सत्य पक्ष को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वीकार करने से इन्कार करता है न? 'दृष्टिरागो हि पापीयान् दुस्त्यजो विदुषामपि।' इसीलिए साफ शब्दों में संवत्सरी अर्थ न करके, 'पर्युषण' शब्द का यों ही गोलमाल भाषा में प्रयोग करते हैं, किन्तु अन्दर में रखते हैं, उसी वार्षिक संवत्सरी प्रतिक्रमण रूप अर्थ को।

समवायांग सूत्र और कल्पसूत्र के किसी भी टीकाकार ने उक्त पाठ के 'पज्जोसवेइ' पाठ का वार्षिक प्रतिक्रमण रूप, जैसा कि आज परम्परा प्रचलित है, अर्थ नहीं किया है, अपितु कारणिक वर्षावास के लिए स्थिर रहना ही अर्थ किया है। समवायांग सूत्र की श्री अभय देवीय टीका का पाठ दिया जा चुका है। कल्पसूत्र के तो मूल में ही उक्त समय के लिए हेतु दिया है, 'जओ णं.........' आदि शब्दों में। वह पाठ भी उद्धृत कर आए हैं, जो स्पष्ट उल्लेख करता है कि श्रमण भगवान् महावीर ने बीस दिन अधिक एक मास बीतने पर वर्षावासरूप पर्युषण किया, आज का प्रचलित संवत्सरी प्रतिक्रमण नहीं।

और तो और; कल्पसूत्र की सुबोधिका टीका के सम्पादक आचार्य सागरानन्द सूरि, जो अभी हुए हैं, उन्होंने भी भगवान् महावीर के द्वारा वर्षावास रूप पर्युषण करना ही लिखा है, सांवत्सरिक प्रतिक्रमण रूप पर्युषण करने का खंडन किया है। जैन परम्परा, भगवान् के लिए सांवत्सरिक प्रतिक्रमण तो क्या, कोई भी प्रतिक्रमण नहीं मानती। अतः प्रत्येक ईमानदार लेखक वही लिखेगा, जो श्री सागरानन्द सूरि इस सन्दर्भ में लिखते हैं—"**अवस्थानपर्युषणापेक्षयैव एतत्सूत्रम्। ततो जिनस्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणस्य अभावेऽपि न क्षतिः। अतएवाऽग्रे 'अगारीणं अगाराइं'. .... इत्यादिनाऽवस्थानोपयोगि एव उत्तरम्।**"

यदि विद्वान् लेखकों का अभिप्राय सांवत्सरिक प्रतिक्रमण नहीं है, वार्षिक आलोचना नहीं है, तो फिर 'पर्युषण' से आपका क्या अभिप्राय है? प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रमाणित वर्षावास अर्थ मानते नहीं, सांवत्सरिक आलोचना एवं प्रतिक्रमण भी नहीं, तो फिर पर्युषण के रूप में भगवान् महावीर ने कौन-सा कैसा पर्युषण किया? आखिर कुछ स्पष्ट तो होना चाहिए। और जब भगवान् महावीर से सम्बन्धित पर्युषण की बात स्पष्ट हो जाए तो फिर आगे होने वाले श्रमणों की बात स्पष्ट हो।

आर्यकालक ने भी वर्षावास ही किया था

आर्यकालक ने उज्जयिनी से विहार कर प्रतिष्ठानपुर में भादवा सुदी 4 को वर्षावास ही आरंभ किया था। क्योंकि कालक कथा में, पर्व लेखानुरूप स्पष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखा है–'मैं आऊँ, तबतक पर्युषण न करना।' जब आज की मान्यता के अनुसार भादवा सुदी पंचमी से पहले पर्युषण होता ही नहीं था, तब उन्हें प्रतिष्ठान श्रमण संघ को यह आदेश भेजने की क्या आवश्यकता थी?

आर्यकालक ने एक दिन पहले पर्युषण किया तो इतिहास में उसका उल्लेख आया, किन्तु, औत्सर्गिक कही जानेवाली आषाढ़ पूर्णिमा से पचास दिन के परिवर्तन का कहीं कोई उल्लेख नहीं? उक्त प्रश्न के समाधान में कहना है कि आर्यकालक द्वारा एक दिन का परिवर्तन कोई खास बात नहीं है, खास बात है अपर्व में पर्युषण करना। कल्पसूत्र में यह तो साफ ही लिखा है कि 'स्थिति अनुकूल हो तो पहले भी पर्युषण करना कल्पता है'–'**अतरा वि य से कप्पइ**।' जब पहले करने का उक्त विधान है, तो फिर परिवर्तन का प्रश्न कहाँ रहता है? प्राचीन जैन परम्परानुसार आषाढ़ पूर्णिमा से लेकर पाँच-पाँच दिन की वृद्धि से, क्षेत्रादि की अनुकूलता देखते हुए, कभी भी पर्युषण किया जा सकता है। भादवा सुदी पंचमी तो अन्तिम सीमा है, जबकि वर्षाएँ प्राय: समाप्त-सी हो जाती है, इसीलिए बृहत्कल्प भाष्य आदि के अनुसार उस दिन से तो वृक्ष के नीचे बैठकर भी पर्युषण=आगे का जघन्य 70 दिन का वर्षावास पूर्ण करने का विधान है। अत: स्पष्ट है कि आर्यकालक का परिवर्तन एक दिन पहले का नहीं, अपितु अपर्व में पर्व करने का परिवर्तन है, जो इतिहास के पन्नों पर चढ़ना ही चाहिए। पंचमी, दशमी, पंदरस पर्व हैं, इनके सिवा शेष तिथियाँ अपर्व हैं, जैसा कि निशीथ चूर्णि में12 एवं अन्य अनेक टीका ग्रन्थों में लिखा है।

जैन इतिहास में आषाढ़ पूर्णिमा से बदल कर भादवा सुदी पंचमी को पर्युषण कब, किसने, क्यों किया, इसका कोई उल्लेख क्यों नहीं है? बात यह है कि भादवा सुदी पंचमी को पर्युषण करना कोई नई बात नहीं थी। अपवाद रूप में उसका उल्लेख पहले से था ही, और यह अपवाद रूप में किया भी जाता था। अत: उसके लिए 'कब, किसने, क्यों किए' का प्रश्न ही गलत है। यदि यह अपर्व में पर्व करने जैसी कोई नई बात होती और किसी एक व्यक्ति विशेष से इसका सम्बन्ध होता, तो संभव है, उल्लेख किया जाता।

अपवाद उत्सर्ग कैसे हो गया?

प्रश्न है अपवाद उत्सर्ग कैसे हो गया? ऐसे हो गया कि उस प्राचीन युग में श्रावक तो होते थे, पर आज जैसे श्रावक संघों का व्यवस्थित विकास नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ था। छेद सूत्र आदि आगम साहित्य एवं उनके भाष्य साहित्य में तथा अनेक जैन कथाओं में यत्र-तत्र उल्लिखित घटनाएँ इस बात की साक्षी हैं। उस समय साधु-संघ को किन परिस्थितियों में से गुजरना होता था, साधारण सी आवश्यकताओं के लिए भी क्या-क्या करना होता था, यह सब यदि कोई प्राचीन साहित्य पढ़े, तो उसे पता लगे। यही कारण है कि मकान की व्यवस्था सहज ही अनुकूल नहीं मिलती थी। अतः उस युग में शय्यातर का महत्त्व काफी बढ़ा चढ़ा था। और इस सम्बन्ध में शय्यातर से आहारादि न लेने आदि के अनेक नियमोपनियम बनाये गए थे। आज की स्थिति कहाँ थी तब? वर्षावास के योग्य क्षेत्र मिलना कठिन था, क्षेत्र मिल भी जाता तो निर्दोष मकान मिलना मुश्किल था। तब साधु, आज की तरह पहले-महीनों पहले ही कहाँ वर्षावास की विनती मानता था? और वह विनती होती भी कहाँ थी? साधू अपने कल्पानुसार अप्रतिबद्ध विहार करता था पवन की तरह। विहार करते-करते जहाँ भी योग्य क्षेत्र मिलता, और तब वर्षावास का समय आ जाता तो वर्षावास कर लेता। जैन अजैन का प्रश्न नहीं था, प्रश्न था अनुकूलता का। यदि आषाढ़ पूर्णिमा को योग्य क्षेत्र मिल जाता तो वहीं वर्षावास कर लेता, यदि न मिलता तो आसपास या वहीं योग्य क्षेत्र एवं मकान आदि तलाश करता, और पाँच-पाँच दिन की वृद्धि के पूर्व निर्दिष्ट क्रम से जब भी मिलता, वर्षावास कर लेता। किन्तु गृहस्थों से अपने वर्षावास करने का कुछ जिक्र न करता। जिक्र करने में दोषों की संभावना जो रहती थी। अतः वर्षावास के दो रूप बने-एक गृहि-ज्ञात और दूसरा गृहि-अज्ञात।[13] आषाढ़ पूर्णिमा से शुरु होने वाला वर्षावास प्रायः अज्ञात ही होता था। प्रायः क्यों, यों कहिए, गृहस्थों से अज्ञात ही रखा जाता था। यदि साधु तभी अपने वर्षावास की निश्चित घोषणा कर दे, और वर्षावास गृहस्थों को ज्ञात हो जाए तो गृहस्थ साधु के द्वारा अवगृहीत मकान की सार संभाल के लिए आरम्भ करेंगे, जैसा कि पहले उद्धरण दे आए हैं। दूसरी बात यह होगी कि साधु का वर्षावास जानकर गृहस्थ वर्षा होने का अनुमान करेंगे, फलतः खेत जोतने-बोने और अपने मकान को आच्छादन करने आदि के उपक्रम में आरंभ समारंभ करेंगे।[14] अतः साधु चुप रहे, कुछ न कहे। पंच पंच दिन वृद्धि के क्रम से यावत् एक महीना बीस रात्रि बीतने पर वर्षावास गृहि ज्ञात भी हो जाए तो कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि तब वर्षाएँ प्रायः समाप्त हो जाती हैं, अतः गृहिज्ञात होने पर न मकान आदि से सम्बन्धित आरंभ समारंभ की संभावना रहती है, और न अपने निमित्त से सुभिक्ष आदि जानकर गृहस्थों द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृषि आदि आरंभ करने की ही कोई स्थिति रहती है। यह सब काम बहुत पहले ही कर लिए गए होते हैं, अतः गृहस्थ के द्वारा संयम में स्वनिमित्तजन्य किसी भी दोष का कोई प्रसंग नहीं आता। कितना अधिक संयम के प्रति सूक्ष्म लक्ष्य था तब के साधु को। आज यह स्थिति कहाँ है? अब तो वह अज्ञात ज्ञात हो जाता है, चौमास लगने से पहले ही दूर-दूर तक सुप्रसिद्ध हो जाता है। अखबारों में छप जाता है। चौमास की मंजूरी के लिए महीनों पहले ही बसों पर बसें और कारों पर कारें जो दौड़ती हैं। क्या इस स्थिति में कुछ अज्ञात रहता है? क्या सब व्यवस्थाएँ पहले से नहीं होती? क्या पहले से व्यवस्था के लिए लम्बे-चौड़े चन्दे चिट्ठे नहीं किए जाते? फिर भी आज के संयमी निर्निमित्तक निर्दोष वर्षावास की कल्पना मन में लिए बैठे हैं तो यह आत्मवंचना नहीं तो क्या है? अतीत को वर्तमान की आँख से देखने वालों को तभी तो वह पर्युषण की विशुद्ध व्यवस्था, जिसका मैंने स्पष्टीकरण किया है, विचित्र सी लगती है। पर सत्य तो सत्य है। उसका अपना एक स्वरूप है। उसे कौन किस आँख से देखता है, इससे उसे क्या लेना देना है।

हाँ तो अपवाद उत्सर्ग केसे हो गया, इसकी चर्चा है। आषाढ़ पूर्णिमा का गृहि-अज्ञात पर्युषण अंततः वर्षा के 50 दिन बीतने पर गृहिज्ञात हो जाता है, अतः उस दिन की प्रसिद्धि स्वतः सिद्ध हो जाती है। उस युग की स्थिति के अनुसार, जैसी कि इतिहास से प्रमाणित है, अनुकूल मकान आदि प्रायः मिलते ही न थे, अतः अपवाद की दृष्टि से अपनाया जाने वाला यह भाद्रपद कालीन पर्युषण अधिक संख्या में होता रहा, और इस कारण अपवाद ही उत्सर्ग हो गया। और यह स्थिति भी आई कि साधु समाज का गृहस्थ समाज से अधिकाधिक संपर्क बढ़ता गया, श्रावक संघ व्यवस्थित रूप में काम करने लगे, साधु की सेवा का बहुत कुछ दायित्व गृहस्थों ने अपने ऊपर ले लिया, परिणामस्वरूप पर्युषण के दो खंड हो गए। अज्ञात जैसा कोई भेद रहा ही नहीं। पंच पंच दिन वृद्धि के पर्व दिन भी धीरे- धीरे लुप्त हो गए। बस पर्युषण के दो ही दिन रह गए, एक आषाढ़ पूर्णिमा और दूसरा भादवा सुदी पंचमी। फलतः पर्युषण से संबंधित क्रियाकांड के भी दो भाग हो गए। वर्षाकाल में निवास रूप पर्युषण मूल रूप में आषाढ़ पूर्णिमा को बना रहा, और उसी से संबंधित केश लोच, पर्युषण कल्पसूत्र का वाचन तथा वार्षिक आलोचना-प्रतिक्रमण आदि पहले से ही गृहज्ञात के रूप में प्रसिद्धि पाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए भादवा सुदी पंचमी के हिस्से में आ गए। और इस प्रकार दोनों ही पर्युषण उत्सर्ग हो गए, अपवाद कोई रहा ही नहीं।

बात लंबी होती जाती है, फिर भी कुछ स्पष्टीकरण तो करना ही होता है। उत्सर्ग का अपवाद होना या अपवाद का उत्सर्ग होना, अधिकतर समाज की बदलती परिस्थिति के कारण होता है। कुछ विशिष्ट प्रसंगों को छोड़कर, कोई एक व्यक्ति विशेष तथा दिनांक (तिथि) विशेष उसके मूल में नहीं होता। पर्युषण के इस परिवर्तन एवं विभाजन में भी बदलता हुआ समय एवं समाज ही हेतु रहा है, और कुछ नहीं।

आगमानुसार दिन का तीसरा पहर भिक्षा एवं विहार का उत्सर्ग था, शेष काल अपवाद ! और वह अपवाद कब किसके द्वारा उत्सर्ग हो गया? एकबार भोजन के अतिरिक्त दुबारा, तिबारा भोजन, जो कभी अपवाद था, आज उत्सर्ग कैसे हो गया? एक पात्र से अधिक पात्र रखना, स्थविरादि के लिए अपवाद था, वह कैसे उत्सर्ग हो गया? एक से दो, दो से तीन, तीन से चार पात्र कब और किसके द्वारा उत्सर्गरूप हुए? जैन परंपरानुसार आषाढ़ और पौष–ये दो ही महीने बढ़ते हैं,[15] चातुर्मास में कोई महीना बढ़ता ही नहीं। तब अपनी मूल परंपरा को छोड़कर चौमास में श्रवणादि–वृद्धि की मिथ्याश्रुतप्रतिपादित मान्यता को कब, क्यों किसने स्वीकार कर लिया? रात्रि के तीसरे पहर के सिवा अन्य पहरों में सोना, भजन आदि के रूप में गाना और लेखादि लिखना, किवाड़ खोलना, विहार में गृहस्थों का साथ रहना, रात को साधु के मकान में गृहस्थों का निवास करना, गृहस्थों से पढ़ना या पढ़ाना, गृहस्थों को पत्रादि लिखना या लिखाना, आदि अनेक अपवाद, ओर कुछ तो कभी शास्त्रनिर्दिष्ट अपवाद भी नहीं थे, उत्सर्ग कैसे हो गए? क्या किसी एक व्यक्ति ने किसी एक निश्चित दिन उक्त सब परिवर्तनों के प्रति उत्सर्ग हो जाने की घोषणा की? इतिहास में दो चार परिवर्तनों के लिए कुछ नाम हैं भी, तो वे भी बदलते आए समय प्रवाह के चतुर उद्घोषक ही हैं, और कुछ नहीं। वर्तमान पर्युषण काल का भी अपवाद से उत्सर्ग होना, एक ऐसा ही परिस्थितियों का बदलता प्रवाह था, और कुछ नहीं।

संवत्सरी और चातुर्मासिक–दो पर्व एक दिन कैसे?

संवत्सरी पर्व और चातुर्मासिक पर्व, दो भिन्न पर्व हैं। वे एक दिन कैसे होंगे, दोनों की प्रायश्चित्त व्यवस्था कैसे होगी? यह इतना उथला प्रश्न है कि मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार में पड़ जाता है। क्या प्रश्नकर्ताओं ने कुछ सोच समझ कर प्रश्न किया है, या ऐसे ही 'चलो यह भी एक ढेला सही' और बस अंधेरे में ढेला फेंक दिया है।

पाक्षिक पर्व भी को पर्व है, जो पाक्षिक आलोचना के रूप में साधु के लिए अति निकट का आवश्यक पर्व है। पाक्षिक क्षमापना भी है, उसका तप भी है, प्रायश्चित्त भी है। किन्तु जब वह तीन चातुर्मासिक पर्वों के साथ एक दिन ही आता है, तब क्या होता है? पाक्षिक और चातुर्मासिक पर्व एक साथ दो कैसे मानते हैं, कैसे दोनों का एक साथ प्रायश्चित्त लेते हैं, क्षमापना करते हैं? जो समाधान आपने इन दोनों पर्वों का, उनके प्रायश्चित्त आदि का कर रखा है, वही संवत्सरी और चातुर्मासिक पर्व के संबंध में कर लीजिए, क्या परेशानी है आपको?

क्या वह शास्त्रार्थों का युग फिर से आ सकता है?

आज ज्वरग्रस्त हूँ और ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। मैं अपने विचार लिख देता हूँ, बाद में यदि कोई खास प्रश्न या शंका हो तो चर्चा करता हूँ। अन्यथा आधारहीन बेतुकी चर्चा-प्रतिचर्चाओं में मुझे रस नहीं है। मुझे इस गिरते स्वास्थ्य में और भी कुछ महत्त्वपूर्ण काम करने होते हैं। अत: मैं उत्तर देना चाहता नहीं था। किन्तु विचारकों का आग्रह रहा कि ऐसे तो व्यर्थ की भ्रांति फैलेगी, असत्यपक्ष को महत्त्व मिलेगा। उत्तर देना ही चाहिए।

बात उनकी भी ठीक है। हमारा समाज स्वाध्यायशील कम है। प्राकृत संस्कृत के प्राचीन मान्य ग्रंथों से संपर्क प्राय: है ही नहीं। आगमों के भी गलत अनुवाद पढ़े जाते हैं, जिनमें मूल कुछ कहता है तो अनुवाद कुछ कहता है। हँसी आती है—ऐसे भ्रष्ट अनुवादों को पढ़ते समय तटस्थ विद्वानों को। जनता क्या करे, वह सुनी सुनाई ब्रातों को ही 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' मान कर चलती है। फिर सांप्रदायिक गुरुजनों की बात का बहुमान तो भक्तों के लिए इतना विचारातीत है कि कुछ पूछिए ही नहीं। अत: भ्रांतिनिराकरण हेतु प्रतिवाद रूप में कभी कुछ लिखना ही होता है। परंतु मैं इसे बहुत उपयोगी पथ नहीं मानता। क्योंकि पत्रों में यह चर्चा परोक्ष रूप में चलती है, अत: उसे फिर तोड़-मरोड़ कर, औंधासीध ा जो मन आया, भक्तों को समझा दिया जाता है और अपने उखड़ते पक्ष को जैसे-तैसे फिर जमा दिया जाता है। प्राचीन युग में आमने-सामने, जनता की उपस्थिति में चर्चा होती थी, जिसे शास्त्रार्थ भी कहते थे। इन चर्चाओं को सुनने के लिए संबंधित पक्षों की जनता ही नहीं, किन्तु अन्य जनता भी उपस्थित होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी और जिज्ञासु प्रत्यक्ष में उभयपक्ष के प्रतिपादित सिद्धांतों को सुनकर उनके बलाबल का, या सत्यासत्य का निर्णय करते थे। श्रावस्ती में केशी गौतम का सुप्रसिद्ध संवाद भी सर्वसाधारण जनता की उपस्थिति में ही हुआ था। आज भी ऐसा हो तो मैं पसंद करूँगा। पसंद क्या, ऐसा होना ही चाहिए। संस्कृत प्राकृत भाषा के गंभीर अभ्यासी, साथ ही तटस्थ विद्वानों की निर्णायकता में आज के कुछ विवादास्पद विचारपक्षों की सार्वजनिक रूप से मुक्त चर्चा होना आवश्यक है। विचार चर्चा का यह पक्ष सत्य के अधिक निकट होगा, जनता के मन की भ्रांतियों के निराकरण में समर्थ होगा। क्या ऐसा कुछ हो सकेगा? हो सकेगा, तो बहुत ही सुंदर। शतशत साधुवाद। विगत दिल्ली यात्रा में भी मैंने सार्वजनिक चर्चा के लिए मुक्त आह्वान किया था, परन्तु खेद है कुछ हुआ नहीं।

पर्युषण पर्व की मंगल चर्चा के प्रसंग पर यदि कहीं कुछ कटु एवं मर्यादाबाह्य लिखा गया हो, तो हार्दिक क्षमायाचना।

संदर्भ

1. मूल शब्द अरक है, वही बोलचाल की भाषा में आरक या आरा बोला जाता है।

2. अनवस्थित कल्प का अर्थ अनियत कल्प है। कभी-कभार आवश्यकता होने पर पालन कर लिए जाते हैं, अधिकतर सामान्य स्थिति में पालन नहीं किए जाते। इनके लिए नित्य पालन जैसा कोई विधान नहीं है। आचार्य हरिभद्र पंचाशक की स्वोपज्ञ टीका में लिखते हैं "नो नैंव सततसेवनीय:, सदा विधेयोऽनित्यमर्यादास्वरूपोऽनियतव्यवस्थास्वभाव इति कृत्वा कदाचिदेव पालयन्तीति भाव:।"

3. दोसाऽसति मज्झिमगा, अच्छंती जाव पुव्वकोडी वि।
विचरंति य वासासु वि, अकद्दमे पाणरहिए य ।।6435।।

4. सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स जिणस्स।
मज्झिमगाण जिणाणं, कारणजाए पडिक्कमणां ।।6425।।

—बृहत्कल्पभाष्य

'सप्रतिक्रमण:' उभयकालं षड्विधावश्यकरणयुक्तो धर्म: पूर्वस्य पश्चिमस्य च जिनस्य तीर्थे भवति.....मध्यमानां तु जिनानां तीर्थे 'कारणजाते' तथाविधेऽपराधे उत्पन्ने सति प्रतिक्रमणं भवति।

—बृहकल्प भाष्य टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यम जिनपतीनां कारणसद्भावेऽपि दैवसिकरात्रिके एव प्रायः प्रतिक्रमणे, न तु पाक्षिक–चातुर्मासिक-सांवत्सरिकाणि। तथा चोक्तं सप्ततिशतस्थानकग्रन्थेः–

"देसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय-वच्छरीअ नामाउ।
दुण्हं पण पडिक्कमणा, मज्झिमगाणं तु पढमा।। —कल्प-सुबोधिका, व्या. 1

प्रतिक्रमणम् – श्री आदिनाथ महावीर साधुभिनिश्चियेन उभयकालं प्रतिक्रमणं कर्तव्यम्। 22 तीर्थंकरसाधुभिस्तु अतिचारे -- कारणे जाते प्रतिक्रमणं क्रियते, न जाते न क्रियते।

कल्पसूत्र – कल्पलता व्या. 1

5. एषां च पञ्चानां मेघानां क्रमेणेदं प्रयोजनसूत्रम्....पञ्चमेघवर्षणानन्तरम्।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका, 2 वक्षस्कार

6. कप्पइ निग्गंथाण निग्गंथीणा वा....
से भिक्खू वा भिक्खुणी वा...

7. अथास्मिन् श्री पर्युषणापर्वणि साधूनां धर्मकृत्यानि–
"संवत्सरप्रतिक्रान्तिः, लुंचनं चाष्टमं तपः।
सर्वार्हद्भक्तिपूजा च, संघस्य क्षामणाविधिः।।" कल्पलता व्या. 1

8. आज भी मूर्तिपूजक परंपरा में, भादवे के पर्युषण में भी, पाँच दिन ही कल्पसूत्र वाचने की प्रथा है।

9. श्री कालकाचार्य के उक्त सन्देश कथन पर से विनयविजयजी की वह बात स्वयं अप्रमाणित हो जाती है, जो उन्होंने वार्षिक पर्वरूप पर्युषण का सम्बन्ध आचार्य कालक से जोड़ा है–

'तत्र वार्षिक पर्व भाद्रपद सित पञ्चम्यां, कालकसूरेरनन्तरं चतुर्थ्यामेवेति'

—सुबोधिका, व्या. 1

10. भाद्रपद मासप्रतिबद्धपर्युषणकरणेऽपि नाधिकमासः प्रमाणमिति त्यज कदाग्रहम्।

—सुबोधिका, व्या. 9

11. पंचपंचकवृद्धया गृहिज्ञातादिविस्तरस्तु नात्र लिखितः, सांप्रत संघाज्ञया तस्य विधेर्व्युच्छिन्नत्वाद्।

सुबोधिका व्या. 1

12. तं पुण्णिमाए पंचमीए, दसमीए, एवमादिपव्वेसु पज्जोसवेयव्वं, णो अपव्वेसु। सीसो पुच्छति इयाणिं कहं चउत्थीए अपव्वे पज्जोसविज्जति? आयरियो भणति–कारणिया च चउत्थी अज्जकालगायरिएण पवत्तिया।

—निशीथ चूर्णि, दशम उद्देशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

13. एत्थ य अणाभिग्गहिय, वासांतराय सवीसग मास।
तेण परमभिग्गहियं, गिहिणायं कत्तिओ जाव।।4292।।

—वृहत्कल्पभाष्य

गिहीण य पुच्छंताण कहेंति – इह ठितामो वरिसाकाले। – निशीथ चूर्णि 10/43

14. ....वीसतिराते सवीसतिराते वा मासे आगते अप्पणो अभिग्गहियं विहिणातं वा कहेंति, आरतो ण कहेंति।

—निशीथचूर्णि 10 । 43

'स्थिताः स्मः' इत्युक्ते गृहस्थाश्चिन्तयेयुः-अवश्यं वर्षं भविष्यति येनैते वर्षारात्रमत्र. स्थिताः, ततो धान्य विक्रीणीयुः, गृहं वा छादयेयुः, हलादीनि वा संस्थापयेयुः। यत एवमतोऽभिवर्धित वर्षे विंशतिरात्रे गते, 'इतरेषुच' त्रिषु चन्द्रसंवत्सरेषु सविंशतिरात्रे मासे गते गृहिज्ञातं कुर्वन्ति।

बृ. कल्पभाष्य टीका, 42893

तदा ते गृहस्था मुनीनां स्थित्या सुभिक्षं संभाव्य... दन्तालक्षेत्रकर्षण गृहाच्छादनादीनि कुर्युः।

....अतः तत्परिहाराय पञ्चाशद्दिनैः वयमत्र स्थिताः स्म इति वाच्यम्

—कल्पलता, व्या॰6

15. जति अंते तो णियमा दो आसाढा भवन्ति, अह मज्झे, तो दो पोसा।

—नि. चू. 10/43

जैन टिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगांते चाषाढो वर्द्धते, नाऽन्ये मासाः। तट्टिपनकं तु अधुना न सम्यग् ज्ञायते।

—सुबोधिका, व्या. 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org